International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493
Received: 26-07-2022, Accepted: 11-08-2022, Published: 29-08-2022
Volume 4, Issue 2, 2022, Page No. 5-7

मानवाधिकारों से वंचित आदिवासी महिलाएँ

राठोड पुंडलिक
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, माउंट कार्मेल कॉलेज, स्वायत्त बेंगलुरू, कर्नाटक, भारत

सारांश
सयुक्त राष्ट द्वारा सन– 1948 में स्वीकृत मानवाधिकार घोषणापत्र के अंतर्गत कुल–30 अनुच्छेद हैं। जिनमें विश्व समुदाय द्वारा मनुष्य को प्राकृतिक और गरिमापूर्ण जीवन जीने हेतु आवश्यक अनेक अधिकार प्रदान किए गए हैं जिन्हें कोई सरकार अथवा किसी भी प्रकार की संस्थाओं द्वारा छीना नहीं जा सकता। इसी घोषणापत्र को आधार बनाकर हमारे संविधान निर्माताओं द्वारा संविधान के अंतर्गत मूलभूत अधिकारों की अवधारणा को अंगिकृत करते हुए मौलिक अधिकार भारतीय नागरिकों को प्रदान किया गया है। किंतु विड़ंबना यह है कि आज भी भारतीय आदिवासी समाज इन अधिकारों को प्राप्त नहीं कर पाया है अथवा यूँ कहें कि उनके मानवाधिकारों का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से हनन हो रहा है। आदिवासी समाज प्राचीन काल से वर्तमान तक अपने अधिकारों की मांग हेतु विभिन्न तरीकों को आपनाता रहा है और आज भी संघर्षरत है। इस विषय पर मूख्य धारा को गम्भीर रूप से विचार करने की आवश्यकता है।

मूल शब्दः सयुक्त राष्ट्र संघ, मानवाधिकार. मानवाधिकार घोषणापत्र, संविधान, आदिवासी समाज, शोषण, प्राकृतिक अधिकार, महिलाओं का शोषण, आदिवासी जीवन शैली, हस्तक्षेप

प्रस्तावना

मनुष्य प्रकृति से स्वतंत्र है। वह अपनी आत्मरक्षा और अपना आत्मगौरव बनाए रखने हेतु विशेष जीवन प्रक्रिया अथवा जीवन पद्धतियों को अपना सकता है। प्रथम विश्व–युद्ध और द्वितीय विश्व–युद्ध में बड़े पैमाने पर मानवाधिकारों का हनन हुआ। प्राकृतिक नियमों तथा मानवीय गरिमा का उल्लंघन हुआ। फलतरू विश्व के अनेक देशों द्वारा एक साझा विचार मंथन के दौरान निर्णय लिया गया कि मानव के अपने प्राकृतिक अधिकार होते हैं जिनका हनन न हो। इसलिए सयुक्त राष्ट्र संघ ने 10 सितम्बर 1948 को सार्वभौम घोषणापत्र प्रस्तुत करते हुए यह घोषणा की कि सभी नागरिक जन्म से समान हैं।

सयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा घोषित मानवाधिकारों की उद्घोषणा में कुल–30 अनुच्छेद हैं। जिनमें अनेक अधिकारों को स्पष्ट किया गया है। किंतु वर्तमान विश्व की स्थिति पर दृष्टि दौडाने पर स्पष्ट हो जाता है कि इन मानवाधिकारों का सफल क्रियान्वयन नहीं हो पा रहा है। मध्य एशिया के नागरिक अफ्रिका के कुछ देशों और दक्षिण मध्य एशिया के देशों में हमें अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं। जहाँ मानवाधिकारों का हनन हो रहा है। विडम्बना यह है कि आज विश्व स्तर पर मानवाधिकारों से सर्वाधिक वंचित आदिवासी समाज है। चाहे वह विश्व के किसी भी भौगोलिक क्षेत्र में क्यो न निवास कर रहा हो। आज विश्व का आदिवासी समाज अनुभव कर रहा है कि उनकी स्वतंत्रता को छीना जा रहा है और उन्हें किसी न किसी तरह से उनके अधिकारों से वंचित किया जा रहा है। यह वंचना बोध ही मानवाधिकारों का ध्योतक है।

घोषणापत्र के कुल–30 अनुच्छेदों में अनेक अधिकार प्रदान किए गये हैं किंतु यदि हम हम भारतीय आदिवासी समाज की बात करें तो इनके संदर्भ में अधिकांश अधिकारों का उल्लंघन हो रहा है। अप्रत्यक्ष रूप से इन सभी अनुच्छेदों का उल्लंघन हो रहा है किंतु अनुच्छेद–1, अनुच्छेद–4, अनुच्छेद–9, अनुच्छेद–12, अनुच्छेद–17, अनुच्छेद–22, अनुच्छेद–23, अनुच्छेद–25, और अनुच्छेद–26 आदि का प्रत्यक्ष रूप से उल्लंघन हो रहा है। इन अनुच्छेदों में प्रदान किए गये अधिकारों से अभी भारतीय आदिवासी समाज कोसों दूर है। यह भारतीय लोकतंत्र की शर्मनाक स्थिति को स्पष्ट करता है।

पिछले दिनों सर्वोच्च न्यायालय ने इस बात को पुनरू दोहराया कि आर्यों एवं द्रविडों से भी पहले आदिवासी समूह इस भारत भूमि पर रहते थे। "हजारी बाग में दामोदर के उद्गम क्षेत्र की हाल की खुदाइयों से इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि यह स्थान मानव विकास की प्राचीन कड़ियों से जुडा है।... और यही मानव विकास प्रागैतिहासिक काल से आज तक बहुत ही संतुलित ढंग से चला आ रहा है।"[1]

सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा कि आदिवासियों को छोड़कर बाकी सब बाहर से आकर बसे, चाहे हजारों वर्ष पूर्व आकर क्यो न बसे हों। किंतु विड़म्बना यह है कि इसी भूमि के मूल निवासी आज सबसे अधिक शक्तिहीन, भूमिहीन, बेघर, वंचित, दलित और गरीब हैं। आधुनिक विकास के यज्ञ में सर्वाधिक बलि उनके ही जीवन की चढी है और आधुनिक सत्ता–प्रशासन की संवेदन शून्यता, दमन, शोषण, भ्रष्टाचार के शिकार भी वे ही सर्वाधिक हुए हैं। ऐसी स्थिति में कोई अचरज की बात नहीं की देश के अनेक क्षेत्रों में मावोवादी हिंसा की आग धधक उठी है। वैसे तो वे कई जगह लोकतांत्रिक तरीके से आवाज उठाते रहे हैं तथा कई बार अपने को असहाय पाकर उन्होंने नियति को चुपचाप स्वीकार भी करा लिया है। आदिवासियों की यह स्थिति भारतीय लोकतंत्र पर गहरा प्रश्नचिन्ह खड़ा करती है। भले ही मुख्य धारा भारतीय लोकतंत्र को विश्व का सबसे बड़ा या सफल लोकतंत्र क्यों न मान ले।

ऐतिहासिक रूप से आदिवासी समाज का सदा शोषण होता रहा है और उनके अधिकारों का हनन भी किंतु देश के स्वतंत्र होने के बाद समता, विविधता, और समरसता पर आधारित एक नए भारत के निर्माण का अवसर आया। जिसमें औपनिवेशिक कालीन अन्यायों, अत्याचारों, तथा अमानवीयता का निराकरण हो सकता था। भारत के संविधान निर्माताओं ने

भी संविधान के अंतर्गत आदिवासियों के हितों के संरक्षण हेतु मौलिक अधिकारों के अलावा अनुच्छेद–29, अनुच्छेद–30, अनुच्छेद–46, अनुच्छेद–347, अनुच्छेद–350, ।,ठ में आदिवासी हितों एवं संरक्षण एवं सवर्धन हेतु प्रावधान करने की घोषणा की किंतु अन्य कई मामलों में भी भारतीय आदिवासियों के साथ न्याय नहीं हो पाया। संविधान की मूल भावना एवं उसके महान उद्धेश्य का अनुचित प्रयोग होता रहा।

स्वतंत्रता के पश्चात और संवैधानिक प्रावधानों के उपरांत भी आदिवासी समाज का शोषण जारी रहा, जन्म से अपराधी घोषित 'कबुतरा' जैसी जनजाति तथा विमुक्त घुमंतु जनजातियों की स्थिति वही रहीं जो स्वतंत्रता के पूर्व समय में थी। जन्म से अपराधी जनजाति अधिनियम को लेकर पं. जवाहरलाल नेहरू ने अक्टूम्बर 1936 ई. में कहा था कि "अपराधी जनजातीय अधिनियम के विनाशकारी प्रावधान को लेकर मैं चिंतित हूँ। यह नागरिक स्वतंत्रता का निषेध करता है। इसकी कार्यप्रणाली पर व्यापक रूप से विचार करना चाहिए और कोशिश की जानी चाहिए कि इसे अधिनियम से हटाया जाए। किसी भी जनजातियों को अपराधी करार नहीं दिया जा सकता यह सिद्धांत न्याय और अपराधियों से निपटने के किसी भी सिद्धांत से मेल नहीं खाता।"[2] स्वतंत्रता के बाद भी इस अधिनियम को जारी रखा गया। इतना ही नहीं बल्कि 'वन अधिनियम', 'भूमि अधिग्रहण अधिनियम', आदि अनेक कानून बनाए गए जो आदिवासी जीवन को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं और वे सभी जारी रहे। फलतरू आदिवासियों के प्राकृतिक अधिकारों के हनन की प्रक्रिया भी जारी रही।

स्वतंत्रता के पश्चात पहली घटना संभवतरू बस्तर के राजा 'प्रवरचंद भंजदेव' की पुलिस द्वारा हत्या थी, जिसमें आगे की घटनाओं का सर्वप्रथम संकेत मिलता है। 'भंजदेव' मूलतरू आदिवासी नहीं थे किंतु वे आदिवासियों के राजा हो गए थे। इस क्षेत्र में आदिवासियों का प्रतिरोध स्वतंत्रता पूर्व से चल रहा था। 'जंगल के फूल' उपन्यास में स्वतंत्रता पूर्व के प्रतिरोध का चित्रण मिलता है और वही विरोध स्वतंत्रता के बाद 'भंजदेव' की घटना में दृष्टिगोचर होती है।

उधर पश्चिमी नकल पर चल रहीं विकास परियोजनाओं में सर्वाधिक आदिवासियों का ही आशियाना उजड़ा। बड़े बांध हो या कारखाने– 'आधुनिक भारत के मंदिरों' की बुनियाद आदिवासियों और जंगल के विनाश पर ही रखी गयी। भिलाई, बोकारो हो या राउरकेला सब आदिवासियों की भूमि पर ही बने। आज भी इन मंदिरों के आस–पास क्षेत्र के आदिवासी समुदाय कंगाल, कुपोषित, वंचित, फटेहाल और प्रदूषण से उत्पन्न विभिन्न भयानक बीमारियों के शिकार हैं। भूख मिटाने हेतु वे जंगल में भ्रमण करते रहते हैं। भूख का एक संदर्भ देखें "पेट के लिए चारा तलाशते हुजूर ! यहाँ खाने का ठिकाना कहा है। थोडा सा 'मक्का' पैदा होता है। कुछ 'कुदई' और 'कुटकी'। पर चार छह माह से ज्यादा पेट नहीं चल सकता। इसलिए हम सब जंगल जाते हैं।"[3] आधुनिक विकास की विसंगतियाँ भली–भाँति सामने आने के बाद भी उस पर गम्भीरता से व ईमानदारी से पुनर्विचार की प्रक्रिया अभी तक शुरू नहीं हुई है। बल्कि वैश्वीकरण के मौजुदा दौर में विकास के नाम पर आदिवासी जीवन पर होते हमलें व उनके मानवाधिकारों का हनन के ग्राफ में बढोत्तरी आवश्य हुई है।

भारतीय संविधान में राष्ट्रपति को और राज्य में उनके प्रतिनिधि राज्यपाल को अनुसूचित जनजातियों के लिए रक्षा उपाय हेतु अनुच्छेद–338 के द्वारा शक्तियाँ एवं अनुच्छेद–339 (1), (2) के द्वारा उनकी जिम्मेदारियाँ सुनिश्चित की गयी हैं। वे चाहे तो आदिवासी क्षेत्र में किसी भी कानून या योजना के क्रियान्वयन को रोक सकते हैं। आदिवासियों के मानवाधिकारों की रक्षा कर सकते हैं किंतु स्वतंत्र भारत में आज तक एक बार भी राष्ट्रपति या किसी राज्यपाल द्वारा आदिवासियों के हितों में इन शक्तियों का प्रयोग नहीं हुआ है।

असमानता

समाज में असमानता होना स्वाभाविक है क्योकि प्राकृतिक रूप से सभी व्यक्ति समान नहीं हैं। बावजूद अगर समाज में व्याप्त असमानता के आधार पर किसी के साथ भेद–भावपूर्ण व्यवहार किया जाता है तो वह सामाजिक अन्याय की श्रेणी में आता है। इसी अन्याय से सामाजिक न्याय की अवधारणा का जन्म हुआ और आज सामाजिक न्याय मनुष्य जीवन की आवश्यकता बन गया है।

घोषणापत्र में कहा गया है कि "सभी को इस घोषणा में सन्निहित सभी अधिकारों और आजादियों को प्राप्त करने का हक है और इस मामले में जाति, धर्म, वर्ण, लिंग, भाषा, राजनीति या अन्य विचार प्रणाली किसी देश या समाज विशेष में जन्म, संपत्ति या किसी प्रकार अन्य मर्यादा आदि के कारण भेदभाव का विचार न किया जाएगा।"[4] इसी के आधार पर हमारे संविधान में भी अनुच्छेद–15 में भी यही अधिकार प्रदान किया गया है। किंतु वास्तविकता तो कुछ और ही है। भारत के कई समुदायों और आदिवासी महिलाओं के संदर्भ में इन अनुच्छेदों का पालन नहीं हो रहा है। समाज में धनी वर्ग, सेठ साहुकार, व्यापारी, जमीनदारों तथा सरकारी अफसरों द्वारा इन अनुच्छेदों का हनन हो रहा है। जिसमें सर्वाधिक शोषित आदिवासी समाज तथा उसमे भी आदिवासी महिलाएँ अमानवीय रूप से शोषित हैं। "दो संधी पर खड़ी किशोरी 'रुदिया' को देखते ही साहु गगन बिहारी की आँखों में गिरगिट जैसी चमक जाग उठती है... हीरा है हीरा....। आह रे जोबन...! हाय रे रूप...! जैसे जंगल में गिरा पड़ा हो कोई हीरा अनमोल...।"[5] यही दृष्टिकोण है जिसके फलस्वरूप आदिवासी महिलाओं के अधिकारों का सर्वाधिक हनन होता है।

समाज में जाति, धर्म, लिंग, समुदाय के आधार पर भेदभाव किया जाता है, जिससे समाज में मानवाधिकारों का उल्लंघन होता है। भारतीय आदिवासी समाज इस उल्लंघन के दलदल में जकड़ा हुआ है। जिन्हें असभ्य, जंगली, धृष्ट तथा पिछड़े आदि रूपों में देखकर उनके प्रति भेदभाव किया जाता है। "सखुआपाट माइंस के ऑफिस में गयी तो सब ऐसे घुरने और फुसफुसाने लगे कि बड़ा अटपटा लगा।"[6] यहाँ तक कि सरकार की नीतियाँ भी समान वितरण के मूल सिद्धांत में आदिवासियों के प्रति सौतेला व्यवहार करती है।

आदिवासी महिलाओं का शोषण

संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणापत्र की दृष्टि से देखा जाए तो भारत में सर्वाधिक मानवाधिकारों का हनन आदिवासी महिलाओं का हो रहा है। आदिवासी महिलाएँ अपने जीवन में दो पड़ावों पर समान रूप से संघर्षरत हैं। एक अपने ही समाज में लिंग के आधार पर उनके साथ भेद–भाव होता है। एक संदर्भ देखें "नहीं तो रांड़ औरत की जिंदगी सांड़ के खुर के नीचे दबी घास जैसी होती है। दबेगी, पियरायेगी, सूखेगी और अंत में भूसी बनकर उड जायेगी।"[7] एक विधवा महिला को हम घास के समान ही नहीं बल्कि दबी, कुचली घास के समान देखते हैं। सांड का खुर दूसरा कोई नहीं पुरुषों द्वारा स्त्रियों

की मनोभावनाओं को पहचाने बीना उनके साथ अनुचित व्यवहार करना है। इस व्यवहार से उस महिला के दिलो–दिमाग पर गहरा नकारात्मक प्रभाव पडता है और अंत में मृत्यु को प्राप्त हो जाती है।

पति के मृत्यु के बाद उपन्यास की पात्र विधवा 'रंगैनी' अपने जीवन का संघर्ष नये तरीके से आरम्भ करती है किंतु कई बार भेड़िए रूपि पुरुषों के हवस की शिकारभी होती है। "सच बात है पाहन! रंगैनी ने अब तक अपना सिर ऊपर उठा लिया था, बीते दिनों कई मर्दों ने हमारी देह खंखोरी है। रेलवई के सिपाही और ...फिर एक दिन औघड़वा भी हमारे साथ.. ..।"[8] मानवाधिकारों के अंतर्गत यह अधिकार भी प्रदान किया गया है कि अपने गरिमामय जीवन तथा शोषण से रक्षा करने हेतु न्यायालय अथवा सयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा स्थापित न्यायालय के समकक्ष संस्थाओं में अपील कर सकते हैं। किंतु जो स्त्री कभी अपने गांव तथा समीपवर्ती क्षेत्र के अलावा कुछ न जानती हो, वही उसका विश्व हो अथवा शिक्षा जैसे प्रकाश का आभास भी नहीं हुआ हो वह स्त्री किस प्रकार व कैसे अपने अधिकारों की रक्षा कर सकती है ?

कई आदिवासी समुदायों में स्त्री को समान अधिकार व सम्मान दिया गया है। फिर भी अधिकांश समुदायों में महिलाओं की स्थिति दोय्यम दर्जे की है। दूसरे स्तर पर वे बाहरी समाज से शोषित हैं। शहरी समाज उन्हें एक भिन्न निगाहों से देखता परखता है। आदिवासी महिलाओं के प्रति बाहरी समाज का दृष्टिकोण ही रोमानी और वायवीय होता है। भारत में किए सर्वेक्षण के अनुसार प्रति–24 मिनट में एक महिला का यौन शोषण, प्रति–43 मिनट में अपहरण, प्रति–54 मिनट में बलात्कार और सामूहिक बलात्कार का शिकार महिलाएँ हो रहीं हैं। 'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास की स्त्री पात्र 'मलारी' का ड़ाकू, सेठ, पुलिस सभी शारीरिक शोषन करते हैं। 'मलारी' अपनी विवशता बताते हुए कहती है कि "हाकिम! हमारा कसूर बस इतना है कि हम गरीब हैं, औरत जात हैं, जो भी आता है, ड़रा–धमकाके जबरदस्ती करने को मगजूर (मजबूर) करता है।"[9] कहने का तात्पर्य यह है कि शोषक तबके के लोग केवल अवसर की तलाशा करते रहते हैं क्योकि आदिवासी महिलाएँ उन्हें खुली खेती के समान प्रतीत होती हैं।

स्त्री शोषण नामक विषय का चित्रण आदिवासी केंद्रित सभी उपन्यासों में हुआ है और उनमें यौन शोषण के संदर्भ सर्वाधिक हैं। यौन शोषण अधिकतर बाहरी समाज के पुरुषों द्वारा होता है। जैसे– 'जंगल के आस पास', 'अल्मा कबुतरी', 'जंगल जहाँ शुरू होता है', 'पठार पर कोहरा', 'रथ के पहिए', 'ग्लोबल गाँव के देवता' आदि उपन्यासों में यह समस्या प्रमुख रूप से चित्रित है।

'जंगल के आस पास' उपन्यास में दमकड़ी गाँव के लोग एक आदमखोर से पीड़ित हैं। सरकार ने उसे मारने हेतु एक अंग्रेजी शिकारी 'राबर्ट' को नियुक्त किया है। वहाँ आदिवासी युवतियों को देखकर उसकी काम वासना जागृत हो जाती है। 'राबर्ट' द्वारा शिकार किए गए हिरण को आग में भुना जाता है। एक लड़की को बुलाकर राबर्ट उसे एक माँस का टूकड़ा देताहै और कमर पर हाथ रखकर कहता है "अगर रात को आयेगा तब हम टुमका बरी बरी चीज प्रेजेंट देगा।"[10] यह मानलेना अनुचित होगा कि यह शोषण मानवाधिकार घोषणा के पूर्व का है किंतु यह शोषण आज भी जारी है। एक दिन एका–एक राबर्ट आदिवासी के घर में घुस गया। मकान के भीतर से चीख की ध्वनि सुनाई देने लगती है। "चीखों के साथ ही कुछ इस तरह की उठा–पटक की आवाजें भी जैसे कोई भरती भैंस अपनी जान बचाने के लिए किसी बाघ के साथ युद्ध लढ रही है।"[11]

स्वतंत्रता के बाद भी यह शोषण जारी रहा। 'अल्मा कबुतरी' उपन्यास की पात्र कदमबाई का कथन है कि "हमें तो बचपन से एक सच्चाई समझाई गयी है कि कबुतरी के मर्द की कोई खेती, धरती नहीं होती। कुँआ तालाब पर उसका हक नहीं होता फिर भी जिंदा रहना होता है। अन्न पानी जुटाओं, बिना छत के सोने की आदत ड़ालो मौसम को फतह करो।"[12] इसप्रकार सभी उपन्यासों में कहीं–न–कहीं प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से महिलाएँ शोषण का शिकार होती रहती हैं।

मानवाधिकार की धारणा कहती है कि उसे सम्मानपूर्ण और गरिमामय जीवन जीने का अवसर प्रदान किया जाय किंतु वास्तविकता कुछ और है। हमारे भारत में गरिमामय जीवन का यह स्तर विचारणीय है।

निष्कर्ष

अतः कहना न होगा कि आदिवासी केंद्रित हिंदी उपन्यासों में आदिवासी समाज के मानवाधिकार हनन के अनेक उदाहरणों का चित्रण हुआ है। आदिवासी समाज मानवाधिकार घोषणापत्र एवं भारतीय संविधान द्वारा प्रदत उन मौलिक अधिकारों से भी वंचित है। आदिवासी समाज का भयानक रूप से शोषण हो रहा है। वे सामाजिक न्याय से कोसों दूर हैं। आदिवासी महिलाओं की स्थिति तो विशेष रूप से चिंताजनक है। आदिवासी महिलाओं के प्रति दुर्व्यवहार तथा उनका मानसिक, शारीरिक शोषण का घृणित रूप सभी उपन्यासों में चित्रित हुआ है।

संदर्भ ग्रंथ

1. आदिवासी अस्तित्व और झारखंड़ी अस्मिता के सवाल– डॉ. रामदयाल मुंड़ा दृप्रकाशन संस्थान नई दिल्ली प्र. सं. 2002 – पृ– 30
2. अल्मा कबुतरी – मैत्रेयी पुष्पा– राजकमल प्रकाशन प्र. सं. 2000 – पृ– 104
3. जंगल के फूल – राजेंद्र अवस्थी– राजपाल एंड़ संस दिल्ली दृ प्र.सं. 1996 पृ– 91
4. मानवाधिकार घोषणापत्र का अनुच्छेद– 2
5. पठार पर कोहरा – राकेश कुमार सिंह– भारतीय ज्ञानपीठ प्र.सं. 2003 – पृ– 11
6. ग्लोबल गाँव के देवता – रणेंद्र दृ भारतीय ज्ञानपीठ प्र. सं 2009 – पृ– 70
7. पठार पर कोहरा – राकेश कुमार सिंह– भारतीय ज्ञानपीठ प्र.सं. 2003 – पृ– 73
8. पठार पर कोहरा – राकेश कुमार सिंह– भारतीय ज्ञानपीठ प्र.सं. 2003 – पृ– 69
9. जंगल जहाँ शुरू होता है – संजीव – राधाकृष्ण प्रकाशन प्र.सं. 2000 – पृ– 196
10. जंगल के आसपास– राकेश वत्स – राजपाल एंड संस प्र. सं. 1982 – पृ– 129
11. जंगल के आसपास– राकेश वत्स – राजपाल एंड संस प्र. सं. 1982 – पृ– 129
12. अल्मा कबुतरी – मैत्रेयी पुष्पा – राजकमल प्रकाशन प्र. सं. 2000 – पृ– 113